स्वामी पराङ्कुशाचार्य ग्रन्थमाला - १

श्रीमन्मधुसूदन सरस्वती कृतः

# प्रस्थानभेदः

प्रस्तावना लेखक :

मीमांसावेदान्तसाहित्याचार्य—

डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकरः

एम. ए., पी-एच. डी.

भूतपूर्व अध्यक्षः

धर्मशास्त्रमीमांसाविभागः, संस्कृत महाविद्यालयः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी - ५

हिन्दी व्याख्याकारः

न्यायव्याकरणमीमांसावेदान्ताचार्य—

डॉ० कमलनयन शर्मा

एम. ए., पी-एच. डी.

व्याख्याता ( अस्थायी )

धर्मशास्त्रमीमांसाविभागः, संस्कृत महाविद्यालयः

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी - ५

સમરીતિર્મદાતેનાઃ પરબ્રહ્મ સનાતનઃ।
પ્રીયતાં જાનકીનાથો વેદવેદ્યો મહાગતિઃ॥
અડું રનપાપાળ!

Scanned by CamScanner

॥ श्रीमते पराङ्कुशमुनये नमः ॥

# दो शब्द

अखिल-विश्व-नियमन-कर्त्ता भगवान् श्रीनिवास की असीम अनुकम्पा से ही मैं पढ़ने तथा लिखने में प्रवृत्त हुआ हूँ, ऐसा मेरा आत्म-विश्वास है। पढ़ना-लिखना भी एक योग बतलाया गया है। जिस प्रकार योगी समाधि में एकाग्रचित्त हो जाता है और लक्ष्य से अतिरिक्त अपने का भी ज्ञान नहीं रखता, उसी प्रकार यह भी एक समाधि है—यह सभी विद्वानों को सुविदित है। समाधि के लिये भी अनेक तरीकाओं का वर्णन योगशास्त्र में किया गया है। योगदर्शन के सूत्रकार भगवान् पतञ्जलि ने समाधि के अनेक उपायों को बतलाते हुए ईश्वर-प्रणिधान को भी एक उपाय बतलाया है, जो सहज और कठिन दोनों है। मैंने अपने सभी कार्यों के मूल में ईश्वर की कृपा को ही मानता हूँ, क्योंकि उनके अतिरिक्त न मेरा कोई सहायक प्रतीत होता है और न अकारण दयालु। अतः भगवान् की कृपा से मैं इस ओर प्रवृत्त हुआ। इसलिये उनके चरण-कमलों में प्रणाम करता हूँ।

आज से कुछ दिन पहले जब एकबार मैं आनन्दाश्रम से प्रकाशित मूल सर्वदर्शन-संग्रह का अवलोकन कर रहा था, तब अन्त में देखा कि दार्शनिक-सम्राट् मधुसूदन सरस्वती कृत "प्रस्थानभेदः" नाम की पुस्तक भी संलग्न है आकार-प्रकार से बहुत छोटी थी, किन्तु पढ़ने से अत्यन्त उपयोगी प्रतीत हुई। इतनी छोटी-सी पुस्तक में समग्र संस्कृत-वाङ्मय का समावेश गागर में सागर की बात मालूम पड़ी। इसमें सम्पूर्ण-संस्कृत-वाङ्मय के नामों की गणना ही नहीं, अपितु उनके सभी विषयों का भी निर्देश किया गया है। इसलिये मैंने सोचा कि यदि एक सामान्य हिन्दी के साथ भी इसका प्रकाशन हो जाय, तो सामान्य मानव इससे लाभान्वित हो सकते हैं। इसी उपादेयता को देखते हुये मैंने इस ओर प्रवृत्त हुआ और पूरा किया।

इस कार्य को पूर्ण करने में प्रातः स्मरणीय गुरुवर डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर जी, का वात्सल्य-पूर्ण आशीर्वाद भी अन्तः सुप्त चेतना को जागरित करने में कम सहायक नहीं है। उनका मेरे प्रति कितना वात्सल्य है, इसका वर्णन

Scanned by CamScanner

करना मेरे लिये गूँगे के मीठापन के समान है। अत: उनके चरणों में प्रणाम करता हूँ। पूज्य गुरुवर डॉ० श्रीनारायण मिश्र जी रीडर, संस्कृतपालि विभाग, का० हि० वि० वि० का निर्देशन, उत्साह-संवर्द्धन तथा समुचित परामर्श जीवन का सम्बल रहा है। अत: उनके चरणों में शतशः प्रणाम करता हूँ।

मेरे सर्वविध सहयोगी श्री परमानन्द शर्मा जी साहित्याचार्य, एम० ए० का इसमें अथक परिश्रम है। वे दिन-रात परिश्रम करके इसे प्रकाशित करने का अविस्मरणीय सहायता प्रदान किये हैं। जिसके लिये मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ तथा कृतज्ञ हूँ।

अन्त में प्रेस के प्रबन्ध-सम्पादक महोदय तथा सीसकाक्षर योजक आदि सभी कर्मचारियों को भी जिनकी तत्परता से अत्यन्त शीघ्र पुस्तक को मूर्त्त आकार प्राप्त हुआ है, उन्हें हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

—कमलनयन शर्मा

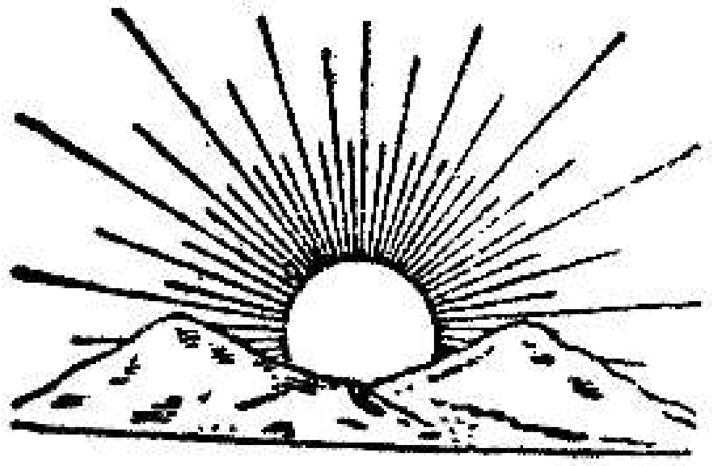

Scanned by CamScanner

॥ श्रीः ॥

# प्रस्तावना

दार्शनिकसार्वभौम मधुसूदन सरस्वती के द्वारा निर्मित 'प्रस्थानभेद' सर्वदर्शन-संग्राहक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें सभी प्रधान शास्त्रों का संग्रह किया गया है। तदनुसार वेद के उपांगों में पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र का संग्रह किया गया है। उनके मतानुसार वैशेषिक दर्शन का न्याय में, वेदान्त का मीमांसा में तथा सांख्य और पातञ्जल, पाशुपत और वैष्णव आदि का धर्मशास्त्र में समावेश है[१]। इन सभी को उन्होंने आस्तिक स्वीकार किया है[२]।

ग्रन्थकार ने नास्तिकों के भी छह प्रस्थानों का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है—माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक—ये चार बौद्ध-प्रस्थान तथा चार्वाक और दिगम्बर[३]।

मधुसूदनसरस्वती का मत है कि शास्त्रों में इन प्रस्थानों का समावेश उचित नहीं, क्योंकि वेदबाह्य होने से पुरुषार्थ प्राप्ति में म्लेच्छादि प्रस्थानों के तुल्य उनका कोई उपयोग नहीं है[४]।

उनके मत में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा, इन छह प्रसिद्ध वैदिक दर्शनों के अतिरिक्त पाशुपत और वैष्णव ( पाँचरात्रों ) का भी वैदिक दर्शनों में समावेश है। उसी तरह नास्तिक अवैदिक दर्शनों में भी दर्शनों की छह संख्या उन्हें मान्य है।

वैदिक दर्शनों के पारस्परिक विरोध के समाधान में वे कहते हैं कि सभी मुनि सर्वज्ञ थे, उन्हें भ्रान्त नहीं कहा जा सकता। अतः यही स्वीकार करना उचित

---

१. प्रस्थान भेद ( बड़ोदा, ई० १९३५ ) पृ० १
२. ,, ,, पृ० २
३. ,, ,, पृ० ५
४. ,, ,, पृ० ५

Scanned by CamScanner

होगा कि बाह्य विषयों में आसक्त रहने वाले लोगों को परम पुरुषार्थ की ओर मुड़ना बड़ा कठिन है, सहज नहीं है। अतः उन्हें उस परम पुरुषार्थ की ओर प्रेरित करने तथा नास्तिकों का निराकरण करने के लिये उन मुनियों ने प्रस्थानों के ( प्रकारों ) भेदों को प्रदर्शित किया है।

साधारण जनता अविचार पूर्वक कल्पना कर लेती है कि वेदविरोधी अर्थ में भी उन मुनियों का तात्पर्य है और उसी का अनुकरण करने लगते हैं[५]। वे लोग उन मुनियों के हार्दिक अभिप्राय को समझने का प्रयास नहीं करते।

प्रत्येक मनुष्य को यह समझने का प्रयत्न करना चाहिये कि इस संसार में आकर जीवन-संग्राम में अपने को विजयी बनाना है। कभी-कभी उसे लड़ना पड़ता है और अपने अनुकूल परिस्थिति करवानी पड़ती है। इसी प्रकार प्रत्येक जीवधारी को लड़ना पड़ता है, अन्तर इतना है कि अन्य जीव बिना विचार किये केवल स्वाभाविक प्रवृत्ति के वशीभूत होकर जीवन संग्राम किया करते हैं, किन्तु मनुष्य विचारशील होने के कारण प्रत्येक कार्य करते समय अपनी विचार शक्ति का उपयोग करता है। यह मनुष्य दृश्य या अदृश्य जगद्विषयक कतिपय श्रद्धाओं, विचारों तथा कल्पनाओं का एक समुदायमात्र है। मनुष्य के समस्त कार्य-विधानों की आधार शिला उसके विचार हैं। श्रीमद्भगवद्गीता ( १७/३ ) बताती है—"यो यच्छ्रद्धः स एव सः।" श्रद्धाओं के अनुरूप ही मनुष्य होता है, उसकी कार्य पद्धति निश्चित होती है तथा उसी के अनुरूप उसे फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का दर्शन होता है। चाहे वह उसे ज्ञात हो या न हो। दर्शन हमारे जीवन के साथ अनुस्यूत हैं। हम उसे अपने जीवन से पृथक् नहीं कर सकते। यदि कोई उसे अपने जीवन से पृथक् करने या कहने का दुःसाहस करे तो उसका जीवन, बुद्धिजीवी चेतन प्राणी का जीवन नहीं कहलायेगा। वह वह तो नैसर्गिक प्रवृत्तियों के वशीभूत हुए पशु का जीवन होगा। इसीलिये पशुओं के साथ आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन के विषय में समानता रहने पर भी मनुष्यों

५. प्रस्थान भेद ( बड़ोदा, ई० १९३५ ) पृ० ५७

Scanned by CamScanner

की सबसे बड़ी विशेषता है। धर्म अर्थात् धारण करनेवाला वस्तु समुदाय उसका विवेक, उसका विचार या उसका दर्शन।

फलतः मनुष्य मात्र से सम्बन्धित होने के कारण ही संक्षेप में दो प्रकार से इन्हें विभक्त किया गया है। उनमें कुछ वेदानुगामी आस्तिक दर्शन हैं, जिनमें छह मुख्यरूप में माने जाते हैं तथा कुछ वेदाविरोधी नास्तिक दर्शन हैं, जो संख्यामें छह ही हैं। इनके अतिरिक्त जो वेदानुगामी या वेदविरोधी अन्यान्य दर्शन हैं, वे सब अपने-अपने अनुरूप इन्हीं छह के ही अन्तर्गत हो जाते हैं।

श्री मधुसूदन सरस्वती के प्रस्थान भेद को देखकर उनकी उदारता की प्रशंसा जैन दार्शनिक भी किया करते हैं। जैन दार्शनिकों का कहना है कि सर्वदर्शन संग्रहकार माधवाचार्य तो अद्वैत को ही अन्तिम सत्य मानते हैं, जबकि जैन दार्शनिकों की दृष्टि से अद्वैत मत भी एक एकान्त ही है, अन्तिम सत्य नहीं।

वेद विरोधी दार्शनिकों के भी प्रशंसापत्र श्री मधुसूदन सरस्वती (ई० १६वीं श०) उद्भट वेदान्ती, रससिद्ध कवि और महान् भगवद्भक्त थे। ये बंगाल के फरीदपुर जिलान्तर्गत कोटालपाडा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम प्रमोदन पुरन्दर था। श्री मधुसूदन सरस्वती जी अपनी बाल्यावस्था में कमलनयन नाम से प्रसिद्ध थे। बाल्यावस्था में ही वे नवदीप में पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने हरिराम तर्कवागीश के पास न्यायशास्त्र का तथा माधव सरस्वती के पास वेदान्तादि-दर्शनों का अध्ययन किया। अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् वे वाराणसी में आये और उन्होंने वाराणसी के अनेक पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने विश्वेश्वर सरस्वती से संन्यास ग्रहण किया। श्री मधुसूदन सरस्वती अद्वैतवेदान्त के महारथी थे। अद्वैतवेदान्त पर इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे। श्रीमद्भगवद्गीता पर गूढ़ार्थदीपिका नाम की व्याख्या भी लिखी।

श्री मधुसूदन सरस्वती जैसे ज्ञानी थे, वैसे ही ये बड़े भगवद्भक्त भी थे। इन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन भी हुआ था। श्रीकृष्ण भक्ति के समक्ष उन्हें सब तुच्छ प्रतीत होता था।

Scanned by CamScanner

उन्होंने कहा भी है कि ध्यान के अभ्यास से जिन्होंने अपने मन को वश कर लिया है, उन योगियों को यदि निर्गुण, निष्क्रिय परम ज्योति का दर्शन होता हो तो भले ही होता रहे, किन्तु हमारे नेत्रों को तो कालिन्दी के पुलिन पर दौड़ लगानेवाला श्यामल तेज ( श्रीकृष्ण का बालरूप ) ही सुख देता है, 'ध्यानाभ्यास-वशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्तु ते। अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं कालिन्दी पुलिनोदरे किमपि यन्नीलं महो धावति ॥ ऐसे सरस सहृदय विद्वन्मूर्धन्य पुण्यश्लोक श्रीमधुसूदन सरस्वती का रचित 'प्रस्थान भेद' ग्रन्थ लघुकाय रहते हुए भी अर्थ की दृष्टि से बहुत गम्भीर है। दर्शनशास्त्र में प्रवेश प्राप्त करने के लिये यह ग्रंथ ही एकमात्र सर्वोत्तम साधन है। कितने ही वर्षों से यह ग्रंथ अप्राप्य हो गया था। किन्तु हमारे प्रिय छात्र डॉ० कमलनयन शर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०, मीमांसा, वेदान्त, न्याय व्याकरणाचार्य ने बड़े परिश्रम से पुस्तक को उपलब्ध कर और उसकी अर्थ सम्पत्ति को सरस, सरल हिंदी भाषा के माध्यम से विभूषित कर उसे सर्वजनबोधाय की सद्भावना से इस महर्घता के काल में महान् व्ययभार को स्वयं वहन कर इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर दिया है। यह हर्ष की बात है, तदर्थ संस्कृत, हिन्दी सभी विद्वानों के वे धन्यवाद एवं अभिनन्दन के पात्र हैं। परमेश्वर उन्हें चिरायु करें और वे इसी प्रकार अनेक दुर्लभ लोकोपयोगी संस्कृत ग्रन्थों को हिन्दी भाषा से विभूषित कर स्वतंत्र भारत राष्ट्र की राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य को वृद्धिगत करते रहें, यही शुभकामना करते हुए आशीर्वाद दे रहा हूँ।

दिनांक ४-६-७९

गजानन शास्त्री
मुसलगाँवकर

Scanned by CamScanner

# विषयानुक्रमणिका


| विषय | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| शास्त्रतात्पर्यवर्णनम् | ... | १ |
| वेदवेदाङ्गोपाङ्गस्वरूपम् | ... | २ |
| नास्तिक प्रस्थान वर्णनम् | .... | २ |
| वेदलक्षणं ब्राह्मण भेदश्च | ... | ४ |
| विधिस्वरूपम् | ... | ४ |
| अर्थवादस्वरूपम् | .... | ६ |
| वेदान्तवाक्यविचार: | .... | ८ |
| वेदानां पुरुषार्थचतुष्टयहेतुत्वम् | ... | ९ |
| अङ्गप्रयोजनम् | .... | १० |
| उपाङ्गप्रयोजनम् | ... | १३ |
| उभयमीमांसा स्वरूपवर्णनम् | .... | १५ |
| उपवेद स्वरूपवर्णनम् | ... | १९ |
| सांख्ययोगयो: स्वरूपम् | .... | २२ |
| वैष्णवशास्त्रवर्णनम् | ... | २४ |
| संक्षेपेण पुन: प्रस्थानविचार: | ... | २४ |
| प्रस्थानानां समन्वय: | ... | २५ |


સમરીતિર્મે દાતેજા: પરબ્રહ્મ સનાતન: ।
જયતાજ્ઞાનમૌ નાથો વેદવેદ્યો મહામતિ: ॥
~ અહુંરનાગપાલ.

# प्रस्थानभेदः

## हिन्दी व्याख्या सहितः

**अथ सर्वेषां शास्त्राणां भगवत्येव तात्पर्यं—**

**श्री श्रीनिवासपरब्रह्मणे नमः ।।**

यह शिष्टाचार से प्राप्त तथा आगम से अनुमोदित है कि विघ्नों के विनाश या ग्रंथ की परिसमाप्ति के लिये आस्तिक जनों को ग्रंथादि के प्रारम्भ में मङ्गल का आचरण आवश्यक है। यहाँ इसका विशेष विवेचन प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि अनेक ग्रंथों में इसकी व्याख्या की गयी है। अधिक जानकारी के इच्छुक सज्जन को उन-उन ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इतना निश्चित है कि ग्रंथादि के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण आवश्यक है, परन्तु शिष्टों के अग्रणी एवं परमभक्त मधुसूदन सरस्वती ने प्रस्तुत 'प्रस्थान भेद' नाम के ग्रंथ के आरम्भ में मङ्गल क्यों नहीं किया ? यह प्रश्न स्वाभाविक उठ सकता है।

इसका समाधान यह है कि उन्होंने मङ्गलाचरण किया है। ग्रंथ के प्रारम्भ में 'अथ' शब्द का उच्चारण किया है। 'अथ' शब्द और 'ऊँकार' 'मङ्गलार्थक माना गया है, क्योंकि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के मुख से सर्वप्रथम इन्हीं दोनों शब्दों का उच्चारण हुआ। दूसरी बात यह है कि अकार भगवान् वासुदेव का वाचक होता है। कहा भी है--"अकारो वासुदेवः स्यात्"। ( अकार वासुदेव होता है ) भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने स्वयं कहा है कि मैं अक्षरों में अकार हूँ। ( अक्षराणामकारोस्मि ) एवं अष्टश्लोकी में भी कहा गया है कि अकार का अर्थ विष्णु होता है। ( अकारार्थो विष्णुः जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् )। इसलिये सर्वप्रथम अकार के उच्चारण से विष्णु के स्मरण द्वारा मङ्गल हो गया।

यदि कहा जाय कि यह 'अथ' शब्द प्रारम्भार्थक है। अतः मङ्गलार्थक नहीं माना जा सकता, परन्तु यह समुचित नहीं है। कारण यह है कि प्रारम्भार्थक मान लेने पर भी वह मंगलार्थक हो ही सकता है, दोनों प्रयोजन उसी से सिद्ध हो

Scanned by CamScanner

जायेंगे। जिस प्रकार भोजन के लिये दधि का आनयन गमनार्थी के लिये मंगल-सूचक भी हो जाता है, उसी प्रकार यह 'अथ' शब्द आरम्भ और मंगल दोनों का बोधक होगा। महाभाष्यकर ने भी कहा है कि 'द्विगताऽपिहेतवो भवन्ति—आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च प्रीणिता इति''। अर्थात् दो में रहने वाले भी हेतु होते हैं, जैसे—एक ही तर्पण क्रिया से आम्रवृक्ष का सेचन और पितरों की प्रसन्नता भी होती है। उसी प्रकार यह 'अथ' शब्द आरम्भ का सूचक तथा मंगल का प्रतिपादक भी है। अतः ग्रंथकार ने आगम को मानते हुए शिष्टाचार की रक्षा की और नास्तिक्य के आरोप का खण्डन करके ग्रंथ का आरम्भ किया है।

साक्षात्परम्परया वेति समासेन तेषां प्रस्थान भेदोऽत्रोद्दिश्यते। तथाहि— ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इति वेदाश्चत्वारः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति वेदाङ्गानि षट्। पुराणन्याय-मीमांसा धर्मशास्त्राणि चेति चत्वार्युपाङ्गानि। अत्रोपपुराणानामपि पुराणेऽन्तर्भावः। वैशेषिकशास्त्रस्य न्याये वेदान्तशास्त्रस्य मीमांसायाम्। महाभारतरामायणयोः सांख्यपातञ्जलपाशुपतवैष्णवादीनां च धर्मशास्त्रे। मिलित्वा चतुर्दश विद्याः। तथा चोक्तं याज्ञवल्क्येन (१-३)।

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ इति।

एता एव चतुर्भिरुपवेदैः सहिता अष्टादशविद्या भवन्ति। आयुर्वेदो, धनुर्वेदो गान्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं चेति चत्वार उपवेदाः। सर्वेषां चाऽस्तिका-नामेतावन्त्येव शास्त्रप्रस्थानानि। अन्येषामप्येकदेशिनामेतेष्वेवान्तर्भावात्।

ननु नास्तिकानामपि प्रस्थानान्तराणि सन्ति तान्येतेष्वनन्तर्भावा-त्पृथग्गणयितुमुचितानि। तथाहि—शून्यवादेनैकं प्रस्थानं माध्यमिकानाम्। क्षणिकविज्ञानमात्रवादेनान्यद्योगाचाराणाम्। ज्ञानाकारानुमेयक्षणिक-बाह्यार्थवादेनापरं सौत्रान्तिकानाम्। प्रत्यक्षसलक्षणक्षणिकबाह्यार्थ-

Scanned by CamScanner

**वादेनापरं वैभाषिकाणाम्। एवं सौगतानां प्रस्थानचतुष्टयम्। तथा देहात्मवादेनैकं प्रस्थानं चार्वाकाणाम्। एवं देहातिरिक्तदेहपरिमाणात्मवादेन द्वितीयं प्रस्थानं दिगम्बराणाम्। एवं मिलित्वा नास्तिकानां षट् प्रस्थानानि, तानि कस्मान्नोच्यन्ते।**

साक्षात् या परम्परा सम्बन्ध से सभी शास्त्रों का भगवान् में ही तात्पर्य है अर्थात् सभी शास्त्रों का भगवत्-तत्त्व-प्रतिपादन ही लक्ष्य है। अनेक ऋषि-मुनियों के अनुभव ही शास्त्र है। मुनियों के अनेक होने के कारण शास्त्र भी अनेक हो गये। उन्हीं अनुभूत निबन्धों को प्रस्थान भी कहते हैं। उन प्रस्थानों का संक्षेप रूप से नाम-निर्देश के द्वारा कथन किया जा रहा है। वह इस प्रकार है—

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। उनके छः अङ्ग हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। चार उपाङ्ग हैं—पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र। उपपुराण भी हैं, उनका पुराणों में ही अन्तर्भाव है। इसी प्रकार वैशेषिक शास्त्र का न्याय में, वेदान्तशास्त्र का मीमांसा में, महाभारत, रामायण, सांख्य, पातञ्जल (योग), पाशुपत, वैष्णव आदि शास्त्रों का धर्मशास्त्र में अन्तर्भाव होता है। सभी मिलकर चौदह विद्याएँ होती हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, और छः अङ्गों के साथ चारों वेद, विद्याओं तथा धर्म के चौदह स्थान हैं। चार उपवेदों के सहित यही अट्ठारह विद्याएँ होती हैं। चार उपवेद ये हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र। सभी आस्तिकों के लिये इतने ही शास्त्रप्रस्थान हैं। अन्य कुछ एकदेशी प्रस्थानों का भी इन्हीं में अन्तर्भाव हो जाता है। प्रश्न—नास्तिकों के भी भिन्न-भिन्न शास्त्रप्रस्थान हैं। उनका इन प्रस्थानों में अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। अतः उनकी पृथक् गणना होनी चाहिए। यथा—माध्यमिकों का शून्यवाद के नाम से एक प्रस्थान प्रसिद्ध है। योगाचार का क्षणिक विज्ञानवाद प्रस्थान है।

सौत्रान्त्रिक ज्ञान के आकार से अनुमेय क्षणिक बाह्यार्थ मानते हैं। इसलिये इनका क्षणिक बाह्यार्थवाद प्रस्थान कहलाता है। वैभाषिक अनुमेय न मानकर प्रत्यक्ष सलक्षण क्षणिक बाह्यार्थ मानते हैं। अतः इनका प्रस्थान प्रत्यक्ष सलक्षण-

बाह्यार्थवाद के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार बौद्धों के चार प्रस्थान हैं। चार्वाक देह को ही आत्मा मानता है। इसलिये इनका देहात्मवाद प्रस्थान कहलाता है। जैन आचार्य आत्मा को देह से भिन्न मानते हैं, किन्तु देह के परिमाण के बराबर ही आत्मा का परिमाण मानते हैं। इसलिये इनके प्रस्थान को देहपरिमाणात्मवाद कहते हैं। इस प्रकार सभी मिलकर नास्तिकों के भी छः प्रस्थान होते हैं। इन प्रस्थानों की गणना क्यों नहीं की गयी ?

सत्यम्। वेदबाह्यत्वात्तेषां म्लेच्छादिप्रस्थानवत्परम्परयाऽपि पुरुषार्थानुपयोगित्वादुपेक्षणीयत्वमेव। इह तु साक्षाद्वा परम्परया वा पुमर्थोपयोगिनां वेदोपकरणानामेव प्रस्थानानां भेदो दर्शितः ततो न न्यूनत्वशङ्कावकाशः। अथ संक्षेपेणैषां प्रस्थानानां स्वरूपभेदहेतुप्रयोजनभेद उच्यते बालानां व्युत्पत्तये।

तत्र धर्मब्रह्मप्रतिपादकमपौरुषेयं प्रमाणवाक्यं वेदः। स च मन्त्रब्राह्मणात्मकः। तत्र मन्त्रा अनुष्ठानकारकभूतद्रव्यदेवताप्रकाशकाः। तेऽपि त्रिविधाः। ऋग्यजुःसामभेदात्। तत्र पादबद्धगायत्र्यादिच्छन्दोविशिष्टा ऋचः "अग्निमीडे पुरोहितम्" इत्याद्याः। ता एव गीतिविशिष्टाः सामानि। तदुभयविलक्षणानि यजूंषि। अग्नीदग्नीन्विहरेत्यादिसम्बोधनरूपा निगदमन्त्रा अपि यजुरन्तर्भूता एव। तदेवं निरुपिता मन्त्राः

ब्राह्मणमपि त्रिविधम्। विधिरुपमर्थवादरुपं तदुभयविलक्षणरुपं च। तत्र शब्दभावना विधिरिति भाट्टाः। नियोगो विधिरिति प्राभाकराः। इष्टसाधनता विधिरिति तार्किकादयः सर्वे। विधिरपि चतुर्विधः। उत्पत्त्यधिकारविनियोगप्रयोगभेदात्। तत्र कर्मस्वरुपमात्रबोधको विधिरुत्पत्तिविधिराग्नेयोऽष्टाकपालो भवतीत्यादिः। सेतिकर्त्तव्यताकस्य करणस्य यागादेः फलसम्बन्धबोधको विधिरधिकारविधिर्दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेतेत्यादिः।

**समाधान**—वे प्रस्थान वेदबाह्य हैं। वे वैदिक मर्यादाओं तथा वेदों का खण्डन करते हैं। म्लेच्छादि के प्रस्थानों के समान परम्परया भी पुरुषार्थ के

उपयोगी नहीं हैं। इसलिये वे उपेक्षणीय हैं, गणना के योग्य नहीं है। इस ग्रन्थ में साक्षात् या परम्परा सम्बन्ध से पुरुषार्थोपयोगी तथा वेदानुसारी या वेदोपकारक प्रस्थानों का ही भेद प्रदर्शित किया गया है। इसलिये न्यूनता की आशंका नहीं करनी चाहिए। इसके पश्चात् बालकों के ज्ञान के लिये इन प्रस्थानों का स्वरूप, परस्पर भेद का कारण और सबों के प्रयोजन-भेद का प्रतिपादन किया जा रहा है।

सर्वप्रथम वेद का लक्षण प्रस्तुत करते हैं[1]—धर्म और ब्रह्म के प्रतिपादक अपौरुषेय प्रमाणवाक्य को वेद कहते हैं। वह मन्त्रब्राह्मणात्मक है अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण मिल कर वेदपदवाच्य होता है। अनुष्ठान के सम्पादक द्रव्य और देवता का प्रकाशक मन्त्र होता है। वह तीन प्रकार का है—ऋक्, यजुः और साम। उसमें पादबद्ध गायत्री आदि छन्दों से युक्त मन्त्र ऋक् कहलाता है। यथा—'अग्निमीले पुरोहितं०' इत्यादि। गीति से युक्त ऋचाओं को साम कहते हैं। इन दोनों से भिन्न मन्त्रों को यजुः कहते हैं। 'अग्नीदग्नीन् विहर' इत्यादि सम्बोधन रुप निगद मन्त्र भी यजुः के अर्न्तगत ही माने जाते हैं। इस प्रकार मन्त्रों का निरुपण हुआ।

ब्राह्मण का निरुपण—ब्राह्मण भी तीन प्रकार के होते हैं—विधिरुप, अर्थवाद और उभयविलक्षणरुप ( दोनों से भिन्न )। भट्ट तथा उनके अनुयायी शाब्दी भावना को विधि मानते हैं। प्रभाकर तथा उनके अनुगामी मीमांसक नियोग को विधि मानते हैं। तार्किक ( नैयायिक ) आदि सभी दार्शनिक इष्टसाधनता को विधि मानते हैं।

विधि भी चार प्रकार की होती है—उत्पत्तिविधि अधिकारविधि विनियोगविधि और प्रयोगविधि। याग आदि कर्मों के स्वरुपमात्र के बोधक विधि उत्पत्ति विधि होती है। यथा—'आग्नेयोऽष्टाकपालो भवति' इत्यादि। इतिकर्त्तव्यता से युक्त करण रुप याग आदि का फल के साथ सम्बन्ध का बोधक विधि अधिकार विधि कहलाती है। यथा – 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि।

---

१. धर्मब्रह्मप्रतिपादकत्वे सति अपौरुषेयत्वे सति प्रमाणवाक्यत्वं वेदस्यलक्षणम्।

अङ्गसम्बन्धबोधकोविधिर्विनियोगविधिर्व्रीहिभिर्यजेत समिधो यजतीत्यादिः। साङ्गप्रधानकर्मप्रयोगैक्यबोधकः पूर्वोक्तविधित्रयमेलनरूपः प्रयोगविधिः। स च श्रौत इत्येके। कल्प्य इत्यपरे। कर्मस्वरूपं च द्विविधम्। गुणकर्मार्थकर्म च। तत्र क्रतुकर्मकारकाण्याश्रित्य विहितं गुणकर्म। तदपि चतुर्विधम्। उत्पत्त्याप्यविकृतिसंस्कृतिभेदात्। तत्र वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, यूपं तक्षतीत्यादावाधानतक्षणादिना संस्कारविशेषविशिष्टाग्नियूपादेरुत्पत्तिः। स्वाध्यायोऽध्येतव्यो गां पयो दोग्धीत्यादावध्ययनदोहनादिना विद्यमानस्यैव स्वाध्यायपयः प्रभृतेः प्राप्तिः। सोममभिषुणोति व्रीहीनवहन्त्याज्यं विलापयतीत्यादावभिषवावघातविलापनैः सोमादीनां विकारः। व्रीहीन्प्रोक्षति पत्न्यवेक्षत इत्यादौ प्रोक्षणावेक्षणादिभिर्व्रीह्यादि द्रव्याणां संस्कारः। एतच्चतुष्टयं चाङ्गमेव। तथा क्रतुकारकाण्याश्रित्य विहितमर्थकर्म च द्विविधम्। अङ्गं प्रधानं च। अन्यार्थमङ्गम्। अनन्यार्थं प्रधानम्। अङ्गमपि द्विविधम्। संनिपत्योपकारकमारादुपकारकं च। तत्र प्रधान-स्वरूपनिर्वाहकं प्रथमम्। फलोपकारि द्वितीयम्। एवं संपूर्णाङ्गसहितो विधिः प्रकृतिः। विकलाङ्गसंयुक्तो विधिर्विकृतिः। तदुभयविलक्षणो विधिर्दर्विहोमः। एवमन्यदप्यूह्यम्। तदेवं निरुपितो विधिभागः।

प्राशस्त्यनिन्दान्यतरलक्षणया विधिशेषभूतं वाक्यमर्थवादः। स च त्रिविधः। गुणवादोऽनुवादो भूतार्थवादश्चेति। तत्र प्रमाणान्तरविरुद्धार्थ-बोधको गुणवाद…

अङ्गों का प्रधान के साथ सम्बन्ध का बोध कराने वाली विधि को विनियोग विधि कहते हैं, जैसे—'व्रीहिभिर्यजेत' 'समिधो यजति' इत्यादि।

अङ्गों के सहित प्रधान कर्म के प्रयोग की एकता का बोधक अर्थात् पूर्वोक्त तीनों विधियों के सम्मेलन रूप प्रयोग विधि कहलाती है। कुछ लोग उसको श्रौत मानते हैं तथा कुछ विद्वान् कल्प्य भी मानते हैं। कर्म का स्वरूप दो प्रकार का होता है—गुणकर्म और अर्थकर्म। याग आदि कर्मों के सम्पादक पदार्थों का आश्रयण करके विहित कर्म गुणकर्म कहलाता है। वे गुणकर्म भी चार प्रकार के होते हैं—उत्पत्ति,

Scanned by CamScanner

आप्य,विकृति और संस्कृति । "वसन्ते ब्राह्मणो अग्नीनादधीत' 'यूपं तक्षति' इत्यादि में आधान और तक्षण के द्वारा संस्कार विशेष से विशिष्ट अग्नि तथा यूप आदि की उत्पत्ति होती है । 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' 'गां पयो दोग्धि' इत्यादि स्थलों में अध्ययन तथा दोहनादि के द्वारा पूर्व से विद्यमान स्वाध्याय तथा दुग्ध आदि की प्राप्ति होती है । 'सोममभिषुणोति' 'व्रीहीनवहन्ति' 'आज्यं विलापयति' इत्यादि में अभिषव, अवघात तथा विलापन के द्वारा सोमादि पदार्थों में विकार उत्पन्न होता है । 'व्रीहीन् प्रोक्षति' 'पत्न्यवेक्षते' इत्यदि में प्रोक्षण तथा अवेक्षण आदि के द्वारा व्रीहि आदि द्रव्यों का संस्कार होता है । ये चारों अङ्ग ही हैं, अङ्गी नहीं ।

क्रतु के सम्पादक द्रव्यों का आश्रयण करके विहित कर्म अर्थकर्म कहलाता है और वह दो प्रकार का होता है—अङ्ग और प्रधान । जो दूसरे के लिये अर्थात् दूसरे का उपकारक होता है, वह अङ्ग कहलाता है और जो दूसरे के उपकारक नहीं होता है, वही प्रधान है । अङ्ग भी दो प्रकार का है—सन्निपत्योपकारक और आराद्उपकारक । प्रधान याग के स्वरूप का सम्पादक सन्निपत्योपकारक होता है और फल का उपकारक आराद्उपकारक होता है । इन सभी अङ्गों के सहित जिसका विधान हो, वह प्रकृति और जिसमें सभी अङ्गों का विधान नहीं होता, अपितु विशेष अङ्गों का ही विधान होता है, वह विकृति कहलाती है । इन दोनों से भिन्न विधि दर्विहोम आदि हैं । इसी प्रकार दूसरे का भी ऊह करना चाहिए । इस प्रकार विधिभाग का निरुपण समाप्त हुआ ।

**अर्थवाद निरूपण**—प्राशस्त्य और निन्दा मैं से किसी एक के वाचक विधि के शेषभूत वाक्य को अर्थवाद कहते हैं । वे तीन प्रकार के हैं—गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद । प्रत्यक्ष आदि दूसरे प्रमाणों से विरुद्ध अर्थ का बोधक गुणवाद होता है ।

आदित्यो यूप इत्यादिः । प्रमाणान्तरप्राप्त्यर्थबोधकोऽनुवादो ऽग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादिः । प्रमाणान्तरविरोधतत्प्राप्तिरहितार्थ बोधको भूतार्थवादः । इन्द्रोवृत्राय वज्रमुदयच्छदित्यादिः । तदुक्तम्—

Scanned by CamScanner

विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते ।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः ॥ इति ।

तत्र त्रिविधानामप्यर्थवादानां विधिस्तुतिपरत्वे समानेऽपि भूतार्थवादानां स्वार्थेऽपि प्रामाण्यं देवताधिकरणन्यायात् । अबाधिताज्ञातज्ञापकत्वं हि प्रामाण्यम् । तच्चाबाधितविषयत्वाज्ज्ञातज्ञापकत्वाच्च न गुणवादानुवादयोः । भूतार्थस्य तु स्वार्थे तात्पर्यरहितस्याप्यौत्सर्गिकं प्रामाण्यं न विहन्यते । तदेवं निरुपितोऽर्थवादभागः ।

जैसे—'आदित्यो यूपः' इत्यादि । यहाँ पर यूप को आदित्य कहा गया है, किन्तु यूप में आदित्यत्व प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है । अतः गुणवाद माना जाता है । प्रमाणान्तर से ज्ञात अर्थ के बोधक अर्थवाद को अनुवाद कहते हैं, जैसे—'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' इत्यादि । अग्नि को उष्ण होने के कारण उसमें शीतलता दूर करने की शक्ति प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है । अत यह वाक्य अनुवादक माना जाता है । प्रमाणान्तर के साथ विरोध और उसके प्राप्ति से रहित अर्थ के बोधक अर्थवाद भूतार्थवाद कहलाता है । जैसे—'इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्' इत्यादि । कहा भी है—अर्थवाद तीन प्रकार का होता है, विरोध रहने पर गुणवाद, निश्चित पदार्थ के प्रतिपादक रहने पर अनुवाद और उसकी हानि होने से भूतार्थवाद होता है । तीनों प्रकार के अर्थवाद समान रूप से विधि के स्तावक होते हैं तथापि देवताधिकरण-न्याय से भूतार्थवादों का अपने अर्थ के प्रतिपादकता में प्रामाण्य रहता है अर्थात् वह अपने अर्थ का भी प्रतिपादक होता है । अबाधित और अज्ञात अर्थ का ज्ञापकत्व = बोधकत्व ही प्रामाण्य है । बाधितविषयक और ज्ञात अर्थ का बोधक होने के कारण गुणवाद और अनुवाद का स्वार्थ में प्रामाण्य नहीं होता । भूतार्थवाद का स्वार्थ में तात्पर्य न रहने पर भी स्वाभाविक प्रामाण्य का विघात = विनाश नहीं होता । इस प्रकार अर्थवाद भाग का निरुपण हुआ ।

विध्यर्थवादोभयविलक्षणं तु वेदान्तवाक्यम् । तच्चाज्ञातज्ञापकत्वेऽप्यनुष्ठानाप्रतिपादकत्वान्न विधिः । स्वतः पुरुषार्थपरमानन्दज्ञानात्मकब्रह्मणि स्वार्थं उपक्रमोपसंहारादिर्षाड्वधतात्पर्यलिङ्गवत्तया स्वतः

प्रमाणभूतं सर्वानपि विधीनन्तःकरणशुद्धिद्वारा स्वविशेषतामापादयदन्यशेषत्वाभावाच्च। तस्मादुभयविलक्षणमेव वेदान्तवाक्यम्। तच्च क्वचिदज्ञातज्ञापकत्वमात्रेण विधिरिति व्यपदिश्यते। क्वचिद्विधिपदरहितप्रमाणवाक्येन भूतार्थवाद इति व्यवह्रियत इति न दोषः। तदेवं निरुपितं त्रिविधं ब्राह्मणम्।

**वेदान्त वाक्य**—विधि और अर्थवाद दोनों से विलक्षण वेदान्त वाक्य होता है। वेदान्त वाक्य अज्ञात का ज्ञापक होता है, तथापि क्रिया के अनुष्ठान का प्रतिपादक न होने के कारण विधि नहीं है।

दूसरी बात मह है कि वेदान्त वाक्यों का स्वतः पुरुषार्थ स्वरूप परमानन्दात्मक और ज्ञानात्मक ब्रह्म में तात्पर्य होता है। उपक्रमोपसंहार आदि छः प्रकार के तात्पर्य बोधक प्रमाणों के द्वारा वह स्वतः प्रमाणभूत होता है। सभी विधियों का अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा अपनी विशेषता का आपादन करते हुए किसी का शेष न होने के कारण भी विधि नहीं कहा जा सकता है। इसलिये दोनों से विलक्षण ही वेदान्तवाक्य है। कहीं-कहीं पर केवल अज्ञात अर्थ के ज्ञापक होने के कारण विधि शब्द से भी व्यवहार किया जाता है। कहीं पर विधि पद से रहित प्रमाणवाक्य होने के कारण भूतार्थवाद भी कहा जाता है। अतः इसमें कोई दोष नहीं है। इस प्रकार तीनों प्रकार के ब्राह्मणों का निरुपण समाप्त हुआ।

एवञ्च कर्मकाण्डब्रह्मकाण्डात्मको वेदो धर्मार्थकाममोक्षहेतुः। स च प्रयोगत्रयेण यज्ञनिर्वाहार्थमृग्यजुः सामभेदेन भिन्नः। तत्र हौत्रप्रयोग ऋग्वेदेन, आध्वर्यवप्रयोगो यजुर्वेदेन, औद्गात्रप्रयोगः सामवेदेन। ब्राह्मयाजमानप्रयोगौ त्वत्रैवान्तर्भूतौ। अथर्ववेदस्तु यज्ञानुपयुक्तः शान्तिकपौष्टिकाभिचारादिकर्मप्रतिपादकत्वेनात्यन्तविलक्षण एव। एवं प्रवचनभेदात् प्रतिवेदं भिन्ना भूयस्यः शाखाः। एवञ्च कर्मकाण्डे व्यापारभेदेऽपि सर्वासां वेदशाखानामेकरूपत्वमेत्र ब्रह्मकाण्डे। इति चतुर्णां वेदानां प्रयोजनभेदेन भेद उक्तः।

Scanned by CamScanner

अथाङ्गानां प्रयोजनमुच्यते। तत्र शिक्षाया उदात्तानुदात्तस्वरित-ह्रस्वदीर्घप्लुतादिविशिष्टस्वरव्यञ्जनात्मकवर्णोच्चारविशेषज्ञानं प्रयोजनम्। तदभावे मन्त्राणामनर्थकत्वात्। तथा चोक्तम्—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

(शि० ५२) इति।

ये कर्मकाण्ड ब्रह्मकाण्डात्मक वेद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के हेतु हैं। वेद तीन प्रकार के प्रयोगों के द्वारा यज्ञों के निर्वाह के लिये ऋक्, यजुः और साम के भेद से भिन्न है। उन में ऋग्वेद के द्वारा हौत्र प्रयोग, यजुर्वेद के द्वारा आध्वर्यव प्रयोग और सामवेद के द्वारा औद्गात्र प्रयोग सम्पन्न होता है। ब्राह्म और याजमान प्रयोग इन्हीं में अन्तर्भूत हैं। अथर्ववेद यज्ञ के उपयोगी नहीं है और शान्तिक, पौष्टिक तथा अभिचार आदि कर्मो के प्रतिपादक होने के कारण अत्यन्त विलक्षण ही है। इसीप्रकार प्रवचन के भेद से प्रत्येक वेदों की भिन्न-भिन्न अनेक शाखाएँ हैं। कर्मकाण्ड भाग में व्यापार के भेद से वेदों की भिन्नता रहने पर भी ब्रह्मकाण्ड में सभी शाखाओं की एकरुपता ही रहती है। इस प्रकार चारों वेदों के प्रयोजन के भेद से भेद का प्रतिपादन किया गया।

अब अङ्गों के प्रयोजन का निरुपण करते हैं। –

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत आदि से युक्त स्वर व्यञ्जनात्मक वर्णो के उच्चारण का विशेष ज्ञान शिक्षा का प्रयोजन है। इसके अभाव में मन्त्र अनर्थक = विरुद्ध अर्थ के प्रतिपादक हो जायेंगे। कहा भी है—स्वर या वर्ण से हीन मन्त्र का प्रयोग व्यर्थ है, क्योंकि जिस प्रयोजन के लिये उसका प्रयोग किया जाता है, उस प्रयोजन को वह पूर्ण नहीं कर सकता। वह वाणी ही वज्र बन जाती है और यजमान की हिंसा कर देती है। इन्द्रशत्रु ( वृत्र ) का स्वर के अपराध से ही नाश हो गया था।

Scanned by CamScanner

तत्र सर्ववेदसाधारणी शिक्षा अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामीत्यादिपञ्चखण्डात्मिका पाणिनिना प्रकाशिता। प्रतिवेदशाखं च भिन्नरूपा प्रातिशाख्यसंज्ञिताऽन्यैरेव मुनिभिः प्रदर्शिता। एवं वैदिकपदसाधुत्वज्ञानेनोहादिकं व्याकरणस्य प्रयोजनम्। तच्च वृद्धिरादैजित्याद्यध्यायाष्टकात्मकं महेश्वरप्रसादेन भगवता पाणिनिनैव विरचितम्। पाणिनीयसूत्रेषु कात्यायनेन मुनिना वार्त्तिकं विरचितम्। तद्वार्त्तिकस्योपरि च भगवता पतञ्जलिना महाभाष्यमारचि। तदेतत्त्रिमुनि व्याकरणं वेदाङ्गं माहेश्वरमित्याख्यायते। कौमारादिव्याकरणानि तु न वेदाङ्गानि, किन्तु लौकिकप्रयोगमात्रज्ञानार्थानीत्यवगन्तव्यम्। एवं शिक्षाव्याकरणाभ्यां वर्णोच्चारणपदसाधुत्वे ज्ञाते वैदिकमन्त्रपदानामर्थज्ञानाकाङ्क्षायां तदर्थं भगवता यास्केन समाम्नायः समाम्नातः, स व्याख्यातव्य इत्यादित्रयोदशाध्यायात्मकं निरुक्तमारचितम् तत्र च नामाख्यातनिपातोपसर्गभेदेन चतुर्विधं पदजातं निरूप्य वैदिकमन्त्रपदार्थानामर्थः प्रकाशितः। मन्त्राणां चानुष्ठेयार्थप्रकाशनद्वारेणैव करणत्वात्पदार्थज्ञानाधीनत्वाच्च वाक्यार्थज्ञानस्य मन्त्रस्थपदार्थज्ञानाय निरुक्तमवश्यमपेक्षितम्। अन्यथानुष्ठानाऽसम्भवात्। सृण्येव जर्फरी तुर्फरी तू इत्यादिदुरूहाणां शब्दनां (निरु० १३-५) प्रकारान्तरेणार्थज्ञानस्यासम्भवनीयत्वाच्च। एवं निघण्टवोऽपि वैदिकद्रव्यदेवतात्मकपदार्थपर्यायशब्दात्मका निरुक्तान्तर्भूता एव। तत्रापि निघण्टु संज्ञकः पञ्चाध्यायात्मको ग्रन्थो भगवता यास्केनैव कृतः।

एवमृङ्मन्त्राणां पादबद्धच्छन्दोविशेषविशिष्टत्वात्तदज्ञाने च निन्दाश्रवणाच्छन्दोविशेषनिमित्तानुष्ठानविशेषविधानाच्च। छन्दोज्ञानाकाङ्क्षायां तत्प्रकाशनाय धीः श्रीः स्त्रीमित्याद्यष्टाध्यायात्मिका छन्दोविवृतिर्भगवता पिङ्गलेन विरचिता। तत्राप्यलौकिकमित्यन्तेनाध्यायत्रयेण गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगतीति सप्तच्छन्दांसि सावान्तरभेदानि निरूपितानि। अथ लौकिकमित्यारभ्याध्यायपञ्चकेन पुराणेतिहासादावुपयोगीनि लौकिकानि च्छन्दांसि प्रसङ्गान्निरुपितानि व्याकरणे लौकिकपदनिरुपणवत्। एवं वैदिककर्माङ्ग दर्शादि कालज्ञानाय ज्योतिषं

Scanned by CamScanner

भगवताऽऽदित्येन गर्गादिभिश्च प्रणीतं बहुविधमेव।

शाखान्तरीयगुणोपसंहारेण वैदिकानुष्ठानक्रमविशेषज्ञानाय कल्पसूत्राणि। तानि च प्रयोगत्रयभेदात्त्रिविधानि। तत्र हौत्रप्रयोगप्रतिपादकान्याश्वलायन...शाङ्खायनादि प्रणीतानि।

सभी वेदों के लिये शिक्षाएँ हैं। "अब शिक्षा का कथन करूँगा" से प्रारम्भ करके पञ्चखण्डात्मिका शिक्षा पाणिनि के द्वारा प्रकाशित है। वेदों के प्रत्येक शाखाओं में भिन्न-भिन्न रूप से प्रातिशाख्य नाम की भिन्न-भिन्न शिक्षाएँ अनेक मुनियों के द्वारा प्रदर्शित हैं। इस प्रकार वैदिक पदों की साधुता के ज्ञान से अन्यत्र ऊह करना ही व्याकरण का प्रयोजन है। वह व्याकरण शास्त्र "वृद्धिरादैच्" से प्रारम्भ करके आठ अध्यायों में महेश्वर के प्रसाद से भगवान् पाणिनि के द्वारा विरचित है। पाणिनि के सूत्रों के ऊपर कात्यायन मुनि ने वार्तिक की रचना की। उनके वार्तिकों के ऊपर महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की। यह त्रिमुनि व्याकरण वेदाङ्ग और महेश्वर के प्रसाद से प्राप्त होने के कारण माहेश्वर भी कहलाता है। आचार्य कौमार आदि के द्वारा विरचित व्याकरण वेदाङ्ग नहीं हैं, किन्तु केवल लौकिक प्रयोगों के ज्ञान के लिये ही हैं।

इस प्रकार शिक्षा और व्याकरण के द्वारा वर्णों के उच्चारण और पदों की साधुता का ज्ञान हो जाने पर वैदिक मंत्रों और पदों के अर्थ-ज्ञान की आकांक्षा होती है। उसके लिये भगवान् यास्क ने 'समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः' इत्यादि से प्रारम्भ करके त्रयोदश अध्यायों में निरुक्त की रचना की। उसमें नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के भेद से चार प्रकार के पदों का निरुपण करके वैदिक मंत्रों तथा पदों के अर्थों का प्रकाशन किया। अनुष्ठेय पदार्थों का स्मरण के द्वारा ही मंत्रकरण होता है और वाक्यों के अर्थ-ज्ञान के प्रति पदों का अर्थ-ज्ञान कारण होता है। इसलिये मंत्रस्थ पदों के अर्थ-ज्ञान के लिये निरुक्त अवश्य अपेक्षित है। अन्यथा अनुष्ठान ही सम्भव नहीं होगा। 'सृण्येव जर्भरी तुर्फरी तू' इत्यादि दुरुह शब्दों का प्रकारान्तर से अर्थ-ज्ञान सम्भव नहीं है। इसी प्रकार वैदिक द्रव्य और देवात्मक निघण्टु भी पदार्थों के पर्याय शब्दात्मक और

Scanned by CamScanner

निरुक्त के ही अन्तर्भूत है। वह पञ्चाध्यायात्मक निघण्टु नाम के ग्रन्थ भी भगवान् यास्क के द्वारा ही विरचित है।

पादबद्ध और छन्द विशेष से युक्त ऋक् मंत्र होते हैं। उन छन्दों को न जाननेवालों के लिये निन्दाश्रुत है। छन्द विशेषनिमित्तक अनुष्ठान का भी विधान है। अतः छन्द के ज्ञान की आवश्यकता होती है। भगवान् पिङ्गल ने उसके ज्ञान के लिये 'धीः श्रीः स्त्रीम्' इत्यादि से प्रारम्भ करके आठ अध्यायों में छन्दों का विवरण प्रस्तुत किया। उसमें भी 'अलौकिकम्' इन तीन अध्यायों में अवान्तर भेदों के साथ गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुम् और जगती छन्दों का निरुपण किया। उसके बाद 'अथ लोकिकम्' से आरम्भ करके पाँच अध्यायों में पुराण और इतिहास आदि के उपयोगी लौकिक छन्दों का प्रसंगतः निरुपण किया। जिस प्रकार व्याकरण में लौकिक पदों का निरुपण हैं, उसी प्रकार लौकिक छन्दों का भी निरुपण है। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र का वैदिक कर्मों के अङ्गदर्श आदि कालों के ज्ञान के लिये भगवान् आदित्य और गर्ग आदि ऋषियों ने रचना की। यह ज्योतिषशास्त्र अनेक प्रकार के हैं।

शाखान्तरीय गुणों का उपसंहार के कारण वैदिक अनुष्ठानों के क्रमों का ज्ञान अपेक्षित है। उसके लिये कल्पसूत्र हैं। वे तीन प्रकार के प्रयोगों के भेद से तीन प्रकार के हैं—उनमें हौत्र प्रयोगों के प्रतिपादक आश्वलायन तथा शाङ्खायन आदि महर्षियों के द्वारा प्रणीत कल्पसूत्र हैं।

आध्वर्यवप्रयोगप्रतिपादकानि बौधायनापस्तम्बकात्यायनादिप्रणीतानि। औद्गात्रप्रयोगप्रतिपादकानि लाट्यायनद्राह्यायणादिप्रणीतानि। एवं निरुपितः षण्णामङ्गानां प्रयोजनभेदः।

चतुर्णामुपाङ्गानामधुनोच्यते। तत्र सर्गप्रतिसर्गवंशमन्वन्तरवंशानुचरितप्रतिपादकानि भगवता बादरायणेन कृतानि पुराणानि। तानि च ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं शैवं भागवतं नारदीयं मार्कण्डेयमाग्नेयं भविष्यं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गं वाराहं स्कान्दं वामनं कौर्मं मात्स्यं गारूडं ब्रह्माण्डं चेत्यष्टादश।

Scanned by CamScanner

आद्यं सनत्कुमारेण प्रोक्तं वेदविदांवराः।
द्वितीयं नारसिंहाख्यं तृतीयं नान्दमेव च॥
चतुर्थं शिवधर्माख्यं दौर्वासं पञ्चमं विदुः।
षष्ठं तु नारदीयाख्यं कापिलं सप्तमं विदुः॥
अष्टमं मानवं प्रोक्तं ततश्चोशनसेरितम्।
ततो ब्रह्माण्डसंज्ञं तु वारुणाख्यं ततः परम्॥
ततः कालीपुराणाख्यं वासिष्ठं मुनिपुङ्गवाः।
ततो वासिष्ठं लैङ्गाख्यं प्रोक्तं माहेश्वरं परम्॥
ततः साम्बपुराणाख्यं ततः सौरं महाद्भुतम्।
पाराशरं ततः प्रोक्तं मारीचाख्यं ततः परम्॥
भार्गवाख्यं ततः प्रोक्तं सर्वधर्मार्थसाधकम्।

एवमुपपुराणान्यनेकप्रकाराणि द्रष्टव्यानि। न्याय आन्वीक्षिको पञ्चाध्यायी गौतमेन प्रणीता। प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानाख्यानां षोडशपदार्थानामुद्देशलक्षणपरीक्षाभिस्तत्त्वज्ञानं तस्याः प्रयोजनम्। एवं दशाध्यायं वैशेषिकं शास्त्रं कणादेन प्रणीतम्। द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां षण्णां पदार्थानामभावसप्तमानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां व्युत्पादनं तस्य प्रयोजनम्। एतदपि न्यायपदेनोक्तम्।

बौधायन, आपस्तम्ब और कात्यायन आदि के द्वारा प्रणीत आध्वर्यव प्रयोगों के प्रतिपादक कल्पसूत्र हैं। लाट्यायन, द्राह्यायण आदि के द्वारा प्रणीत कल्पसूत्र औद्गात्र प्रयोगों के प्रतिपादक हैं। इस प्रकार छः अङ्गों का प्रयोजन तथा भेद निरूपित हुआ।

अब चारों उपाङ्गों का प्रयोजन कहते हैं। उनमें भगवान् बादरायण (व्यास) के विरचित सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित का प्रतिपादक पुराण हैं। उन पुराणों की संख्या अट्ठारह है—ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लैङ्ग, वाराह, स्कान्द, वामन,

कौर्म, मात्स्य, गारुड़ और ब्रह्माण्ड। इसी प्रकार उपपुराण भी अनेक प्रकार के हैं—यथा—सनत्कुमार के द्वारा विरचित आदिपुराण है। द्वितीय नारसिंह, तृतीय नान्द, चतुर्थ शिवधर्म, पञ्चम दौर्वास, षष्ठ नारदीय, सप्तम कापिल, अष्टम मानव, नवम औशनस, दशम ब्रह्माण्ड, एकादश वारुण नामक, उसके बाद काली पुराण और वासिष्ठ, वासिष्ठ लैंग और माहेश्वर, साम्ब और सौर, पराशर और मारीच एवं भार्गव पुराण है। ये उपपुराण सभी प्रकार के धर्म और अर्थ के साधक माने गये हैं।

न्याय दर्शन को ही आन्वीक्षिकी भी कहते हैं। यह दर्शन पाँच अध्यायों में विभक्त और गौतम प्रणीत है। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह स्थान नाम के सोलह पदार्थों का उद्देश, लक्षण और परीक्षा के द्वारा तत्त्वज्ञान ही इसका प्रयोजन है।

कणाद ने दश अध्यायों में वैशेषिक शास्त्र का निर्माण किया। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, इन छः तथा सातवाँ अभाव नाम के पदार्थों का परस्पर साधर्म्य और वैधर्म्य के प्रतिपादन द्वारा शक्तिग्रह ही इस दर्शन का प्रयोजन है। इसका भी न्याय शब्द से कथन किया गया है।

एवं मीमांसा द्विविधा। कर्ममीमांसा शारीरकमीमांसा च। तत्र द्वादशाध्यायी कर्ममीमांसा "अथातो धर्मजिज्ञासा" इत्यादि "अन्वाहार्ये च दर्शनात्" (१६) इत्यन्ता भगवता जैमिनिना प्रणीता। धर्मप्रमाणम्। धर्मभेदाभेदौ। शेषशेषिभावः। क्रत्वर्थपुरुषार्थ······

भेदेन प्रयुक्तिविशेषः। श्रुत्यर्थपनादिभिः क्रमभेदः। अधिकारविशेषः। सामान्यातिदेशः। विशेषातिदेशः। ऊहः। बाधः। तन्त्रम्। प्रसङ्गश्चेति क्रमेण द्वादशाध्यायानामर्थाः। तथा सङ्कर्षणकाण्डमप्यध्यायचतुष्टयात्मकं जैमिनिप्रणीतम्। तच्च देवताकाण्डसंज्ञया प्रसिद्धमप्युपासनाख्यकर्म-प्रतिपादकत्वाकर्ममीमांसान्तर्गतमेव। तथा चतुरध्यायी शारीरकमीमांसा "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" इत्यादिरनावृत्तिः शब्दादित्यन्ता जीवब्रह्मैकत्व-

Scanned by CamScanner

साक्षात्कारहेतुः श्रवणाख्यविचारप्रतिपादकान्न्यायानुपदर्शयन्ती भगवता बादरायणेन कृता। तत्र सर्वेषामपि वेदान्तवाक्यानां साक्षात्परम्परया वा प्रत्यगभिन्नाद्वितीये ब्रह्मणि तात्पर्यमिति समन्वयः प्रथमाध्यायेन प्रदर्शितः। तत्र च प्रथमपादे स्पष्टब्रह्मलिङ्गयुक्तानि वाक्यानि विचारितानि। द्वितीये त्वस्पष्टलिङ्गान्युपास्यब्रह्मविषयाणि। तृतीये पादेऽस्पष्टब्रह्मलिङ्गानि प्रायशोज्ञेतब्रह्मविषयाणि। एवं पादत्रयेण वाक्यविचारः समापितः।

इसी प्रकार मीमांसा दर्शन भी दो प्रकार की है—कर्ममीमांसा और शारीरक मीमांसा। उनमें "अथातो धर्मजिज्ञासा" से प्रारम्भ करके "अन्वाहार्ये च दर्शनात्" इस सूत्र पर्यन्त भगवान् जैमिनि के बारह अध्यायों में कर्ममीमांसा का प्रणयन किया। उसमे धर्म में प्रमाण, धर्म—भेदाभेद, शेषशेषिभाव ( अङ्गाङ्गीभाव ), क्रत्वर्थ और पुरुषार्थ के भेद से प्रयुक्ति विशेष, श्रुति, अर्थ पाठ आदि के द्वारा क्रमभेद, अधिकार विशेष, सामान्यातिदेश, विशेषातिदेश, ऊह, बाध तन्त्र और प्रसङ्ग-क्रम से बाहर अध्यायों का प्रतिपाद्य पदार्थ हैं।

इसी प्रकार जैमिनि ने चार अध्यायों में विभक्त संकर्षण काण्ड का भी प्रणयन किया। यह देवताकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध है तथापि उपासना नाम के कर्म का प्रतिपादक होने के कारण कर्ममीमांसा के अन्तर्गत ही है। चार अध्यायों में विभक्त शारीरक मीमांसा है। इसका प्रणेता भगवान् बादरायण हैं। यह 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' से लेकर 'अनावृत्तिः शब्दात्' इस सूत्र पर्यन्त विस्तृत है। श्रवण नामक विचार-प्रतिपादक न्यायों को प्रकाशित करती हुई जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादन ही इसका प्रयोजन है। सभी वेदान्त वाक्यों का साक्षाद या परम्परा सम्बन्ध से प्रत्यक् से अभिन्न अद्वितीय ब्रह्म में ही तात्पर्य है—यह प्रथम अध्याय में समन्वय किया गया है। प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में स्पष्ट ब्रह्म-लिंग से युक्त वाक्यों का विचार किया गया है। द्वितीय पाद में अस्पष्ट लिंग से युक्त उपास्य ब्रह्म विषयक वाक्यों का विचार है। तृतीय पाद में अस्पष्ट ब्रह्मलिंग से युक्त प्रायः ज्ञेयब्रह्म विषयक वाक्यों का विचार है। इस प्रकार तीन पादों में

Scanned by CamScanner

चतुर्थपादे तु प्रधानविषयत्वेन संदिह्यमानान्यव्यक्ताजादिपदानि चिन्तितानि। एवं वेदान्तानामद्वये ब्रह्मणि समन्वये सिद्धे तत्र संभावित स्मृतितर्कादिप्रयुक्तैस्तर्कैर्विरोधमाशङ्क्य तत्परिहारः क्रियत इत्यविरोधो द्वितीयाध्यायेन दर्शितः। तत्राऽऽद्य पादे सांख्ययोगकाणादादिस्मृतिभिः सांख्यादिप्रयुक्तैस्तर्कैश्च विरोधो वेदान्तसमन्वयस्य परिहृतः। द्वितीये पादे सांख्यादिमतानां दुष्टत्वं प्रतिपादितम्। स्वपक्षस्थापनपरपक्ष-निवारणरूपपर्वद्वयात्मकत्वात् विचारस्य। तृतीये पादे महाभूतसृष्ट्यादि-श्रुतीनां परस्परविरोधः पूर्वभागेण परिहृतः।

उत्तरभागेण तु जीवविषयाणाम्। चतुर्थपादे त्विन्द्रियविषयश्रुतीनां विरोधः परिहृतः। तृतीयेऽध्याये साधननिरूपणम्। तत्र प्रथमे पादे जीवस्य परलोकगमनागमननिरूपणेन वैराग्यं निरूपितम्। द्वितीये पादे पूर्वभागेण त्वंपदार्थः शोधितः। उत्तरभागेण तत्पदार्थः। तृतीये पादे निर्गुणे ब्रह्मणि नानाशाखापठितपुनरुक्तपदोपसंहारः कृतः। प्रसङ्गाच्च सगुणनिर्गुणविद्यासु शाखान्तरीयगुणोपसंहारानुपसंहारौ निरूपितौ। चतुर्थे पादे निर्गुणब्रह्मविद्याया बहिरङ्गसाधनान्याश्रमयज्ञादीन्यन्तरङ्ग-साधनानि शमदमनिदिध्यासनादीनि च निरूपितानि। चतुर्थेऽध्याये सगुण-निर्गुणविद्ययोः फलविशेषनिर्णयः कृतः। तत्र प्रथमे पादे श्रवणाद्यावृत्त्या निर्गुणं ब्रह्म साक्षात्कृत्य जीवतः पापपुण्यालेपलक्षणा जीवन्मुक्तिरभिहिता। द्वितीये पादे म्रियमाणस्योत्क्रान्तिप्रकारश्चिन्तितः। तृतीये पादे सगुण-ब्रह्मविदो मृतस्योत्तरमार्गोऽभिहितः। चतुर्थे पादे पूर्वभागेण निर्गुणब्रह्म-विदो विदेहकैवल्यप्राप्तिरुक्ता। उत्तरभागेण सगुणब्रह्मविदो ब्रह्मलोक-स्थितिरुक्तेति। इदमेव सर्वशास्त्राणां मूर्धन्यम्। शास्त्रान्तरं सर्वमस्यैव शेषभूतमितीदमेव मुमुक्षुभिरादरणीयं श्रीशंकरभगवत्पादोदितप्रकारेणेति रहस्यम्।

वाक्यों का विचार समाप्त किया गया है। चतुर्थ पाद में प्रधान विषय रूप से संदेहास्पद अव्यक्त, अज आदि पदों का विचार है। इस प्रकार वेदान्त वाक्यों

का अद्वितीय ब्रह्म में समन्वय करके द्वितीय अध्याय में उस ब्रह्म में संभावित स्मृति और तर्क आदि से प्रयुक्त तर्कों के साथ विरोध की आशंका और उसका परिहार किया गया है। अतः अविरोध प्रतिपादन ही मुख्य है। उसके प्रथम पाद में वेदान्त-समन्वय का सांख्य, योग, काणाद आदि स्मृतियों और उनके द्वारा प्रयुक्त तर्कों के साथ विरोध का परिहार किया गया है। द्वितीय पाद में सांख्य आदि स्मृतियों के मतों को दोषयुक्त बतलाया गया है। कारण यह है विचार के दो पक्ष होते हैं—स्वपक्ष की स्थापना और परपक्ष का निराकरण। तृतीय पाद के पूर्वभाग में महाभूत की सृष्टि आदि के प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियों के परस्पर विरोध का परिहार है। उसके उत्तर भाग में जीव-विषयक विचार है। चतुर्थ पाद में इन्द्रिय विषयक श्रुतियों के परस्पर विरोधों का परिहार है। तृतीय अध्याय में साधन का निरुपण है। उसके प्रथम पाद में जीव के परलोक में गमन तथा वहाँ से पुनः आगमन के निरुपण के द्वारा वैराग्य का निरुपण है। द्वितीय पाद के पूर्वभाग में त्वं पदार्थ और उत्तर भाग में तत् पदार्थ का शोधन किया है। तृतीय पाद में निर्गुण ब्रह्म में ही अनेक शाखाओं में पठित पुनरुक्त पदों का उपसंहार किया गया है और प्रसंगत सगुण और निर्गुण विद्याओं में शाखान्तरीय गुणों का उपसंहार तथा अनुपसंहार निरुपित है। चतुर्थ पाद में निर्गुण ब्रह्मविद्या के बहिरंग साधनों और आश्रम, यज्ञ आदि अन्तरंग साधनों तथा शम, दम, निदिध्यासन आदि का निरुपण है।

चतुर्थ अध्याय में सगुण और निर्गुण विद्याओं के फल विशेषका निर्णय किया गया है। उसके प्रथम पाद में श्रवण आदि की आवृत्ति से निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार करके जीते हुए ही पाप एवं पुण्य के अलेप-लक्षण जीवन्मुक्ति का प्रतिपादन है। अलेप का सम्बन्धाभाव अर्थात् उससे होने वाले स्वर्ग आदि का अभाव अर्थ है। द्वितीय पाद में मरने वाले पुरुषों की उत्क्रान्ति के प्रकार का विचार है। तृतीय पाद में सगुण ब्रह्म को जानने वाले पुरुष को मर जाने पर उत्तरमार्ग की प्राप्ति का प्रतिपादन है। चतुर्थपाद के पूर्वभाग में निर्गुण को जानने वालों के विदेह कैवल्य की प्राप्ति का वर्णन है। उत्तरभाग में सगुण ब्रह्मज्ञानी का ब्रह्मलोक में स्थिति का वर्णन है। यही सभी शास्त्रों में प्रधान है। इससे

Scanned by CamScanner

भिन्न सभी शास्त्र इसी के अङ्ग-भूत हैं। अतः मुमुक्षुओं के द्वारा श्रीशंकर भगवत्पाद की रीति के अनुसार यही आदरणीय है। यही रहस्यभूत सिद्धान्त है।

एवं धर्मशास्त्राणि मनुयाज्ञवल्क्यविष्णुयमाङ्गिरोवसिष्ठदक्षसंवर्त्त-शातातपपराशरगौतमशङ्खलिखितहारीतापस्तम्बोशनोव्यासकात्यायनबृह-स्पतिदेवलनारदपैठीनसिप्रभृतिभिः कृतानि वर्णाश्रमधर्मविशेषाणां विभागेन प्रतिपादकानि। एवं व्यासकृतं महाभारतं वाल्मीकिकृतं रामायणं च धर्मशास्त्र एवान्तर्भूत स्वयमितिहासत्वेन प्रसिद्धम्। सांख्यादीनां धर्म-शास्त्रान्तर्भावेऽपीह स्वशब्देनैव निर्देशात्पृथगेव संगतिर्वाच्या।

अथ वेदचतुष्टयस्य क्रमेण चत्वार उपवेदाः। तत्रायुर्वेदस्याष्टौ स्थानानि भवन्ति। सूत्रं शारीरमैन्द्रियं चिकित्सा विमानं विकल्पः सिद्धिश्चेति।

धर्मशास्त्र के प्रणेता अनेक आचार्य हैं। यथा—मनु, याज्ञवल्क्य, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त्त, शातातप, पराशर, गौतम, शङ्ख, लिखित, हारीत, आपस्तम्ब, उसना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, देवल, नारद, पैठीनसि इत्यादि। इन सबों ने धर्मशास्त्रों की रचना की है। ये धर्मशास्त्र वर्णधर्म तथा आश्रमधर्म को विभक्त करके प्रतिपादन करते हैं। इसी प्रकार व्यास द्वारा विरचित महाभारत तथा वाल्मीकि-कृत रामायण धर्मशास्त्र के ही अन्तर्गत है और स्वयं इतिहास रूप से प्रसिद्ध है। सांख्य आदि का धर्मशास्त्र में अन्तर्भाव होने पर भी अपने विशेष शब्दों के द्वारा ही निर्दिष्ट होने के कारण उसकी संगति पृथक् ही कहनी चाहिए।

चारों वेदों के क्रमशः चार उपवेद भी हैं। उनमें आयुर्वेद के आठ स्थान होते हैं—सूत्र, शारीर, ऐन्द्रिय, चिकित्सा, निदान, विमान, विकल्प और सिद्धि।

ब्रह्मप्रजापत्यश्विधन्वन्तरीन्द्रभरद्वाजात्रेयाग्निवेश्यादिभिरुपदिष्टश्चरकेण संक्षिप्तः। तत्रैव सुश्रुतेन पञ्चस्थानात्मकं प्रस्थानान्तरं कृतम्। एवं वाग्भट्टादिनाऽपि बहुधेति न शास्त्रभेदः। कामशास्त्रमप्यायुर्वेदान्तर्गतमेव। तत्रैव सुश्रुतेन वाजीकरणाख्यकामशास्त्राभिधानात्। तत्र वात्स्यायनेन

Scanned by CamScanner

पञ्चाध्यायात्मकं कामशास्त्रं प्रणीतम् ।, तस्य च विषयवैराग्यमेव प्रयोजनम् । शास्त्रोद्दीपितमार्गेणापि विषयभोगे दुःखमात्रपर्यवसानात् । चिकित्साशास्त्रस्य रोगतत्साधनरोगनिवृत्तितत्साधनज्ञानं प्रयोजनम् ।

यह ब्रह्मा, प्रजापति,' अश्विन्, धन्वन्तरि, इन्द्र, भरद्वाज, आत्रेय और अग्निवेश्य के द्वारा उद्दिष्ट और चरक के द्वारा संक्षिप्त है अर्थात् उन लोगों ने इस उपवेद का विस्तृत रुप से विवेचन किया और चरक ने उनका सारभूत तत्त्व संक्षेप रुप से अपनी संहिता में प्रतिपादन किया । उसी में सुश्रुत ने पञ्च स्थानात्मक प्रस्थानान्तर का प्रणयन किया । इसी प्रकार वाग्भट्ट आदि आचार्यों ने भी अनेक प्रकार से इसका प्रतिपादन किया गया है तथापि शास्त्रभेद नहीं हैं, एक ही शास्त्र है । कामशास्त्र भी आयुर्वेद के अन्तर्गत ही है । उसी में सुश्रुत ने वाजीकरण नाम के कामशास्त्र का कथन किया है । वात्स्यायन ने पाँच अध्यायों में विभक्त कामशास्त्र का प्रणयन किया है । उसका सांसारिक विषय-वासनाओं से वैराग्य ही प्रयोजन है, शास्त्र से उद्दीपित मार्ग के द्वारा विषय के भोग में दुःख मात्र ही होता है अर्थात् उस भोग की परिसमाप्ति दुःख में ही होती है । चिकित्सा शास्त्र का रोग, रोग के साधन, रोग की निवृत्ति और रोगनिवृत्ति के साधन का ज्ञान ही प्रयोजन है !

एवं धनुर्वेदः पादचतुष्टयात्मको विश्वामित्रप्रणीतः । तत्र प्रथमो दीक्षापादः । द्वितीयः संग्रहपादः । तृतीयः सिद्धिपादः । चतुर्थः प्रयोगपादः । तत्र प्रथमे पादे धनुर्लक्षणमधिकारिनिरूपणं च कृतम् । अत्र धनुःशब्दश्चापे रूढोऽपि धनुर्विधायुधे प्रवर्त्तते । तच्चतुर्विधम्—मुक्तममुक्तं मुक्तामुक्तं यन्त्रमुक्तम् । मुक्तं चक्रादि । अमुक्तं खड्गादि । मुक्तामुक्तं शल्यावान्तर भेदादि । यन्त्रमुक्तं शरादि । तत्र मुक्तमस्त्रमुच्यते । अमुक्तं शस्त्रमित्युच्यते । तदपि ब्राह्मवैष्णवपाशुपतप्राजापत्याग्नेयादि भेदादनेकविधम् । एवं साधिदैवतेषु समन्त्रकेषु चतुर्विधायुधेषु येषामधिकारः क्षत्रियकुमाराणां तदनुयायिनां च ते सर्वे चतुर्विधाः पदातिरथगजतुरगारुढाः । दीक्षाभिषेकशकुनमङ्गलकरणादिकं च सर्वमपि प्रथमे पादे निरुपितम् । सर्वेषां शस्त्रविशेषाणामा-

चार्यस्य च लक्षणपूर्वकं संग्रहणमधिकारो दर्शितो द्वितीयपादे। गुरुसम्प्रदाय-सिद्धानां शस्त्रविशेषाणां पुनः पुनरभ्यासो मन्त्रदेवतासिद्धिकरणमपि निरुपितं तृतीयपादे।

धनुर्वेद चार पादों से युक्त और विश्वामित्र—प्रणीत है। उसका पहला दीक्षापाद, दूसरा संग्रहपाद, तीसरा सिद्धिपाद और चौथा प्रयोगपाद है। प्रथम याद में धनुष का लक्षण और अधिकारी का निरुपण है। यहाँ धनुष शब्द चाप अर्थ में रुढ़ है तथापि चतुर्विध आयुध का वाचक है। वे चार प्रकार के हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और यन्त्रमुक्त। चक्र आदि मुक्त, तलवार आदि अमुक्त, शल्य या शक्ति और उसके अवान्तर भेद मुक्तामुक्त तथा वाण आदि यन्त्रमुक्त कहलाते हैं। मुक्त को अस्त्र और अमुक्त शस्त्र कहते हैं। वे भी ब्राह्म, वैष्णव, पाशुपत, प्राजापत्य, आग्नेय आदि के भेद से अनेक प्रकार के हैं। इस प्रकार अधिदेवता और मन्त्रों के सहित चार प्रकार के आयुधों में जिन क्षत्रिय -कुमारों का अधिकार है, उनके अनुयायी भी वे चार प्रकार के होते हैं—पदाति, रथारुढ़, गजारुढ़ और तुरगारुढ़। तुरग अश्व का वाचक है। प्रथम प्राद में दीक्षा, अभिषेक, शकुन तथा मङ्गलकरणादि निरुपित हैं। द्वितीय पाद में सभी शस्त्र-विशेषों के आचार्यों का लक्षण पूर्वक संग्रह करने की तरीका प्रदर्शित है। तृतीय पाद में गुरु सम्प्रदाय से सिद्ध शस्त्र विशेषों का पुनःपुनः अभ्यास और मन्त्र, देवता आदि का सिद्धिकरण भी निरूपित है।

एवं देवतार्चनाभ्यासादिभिः सिद्धानामस्त्रविशेषाणां प्रयोगश्चतुर्थपादे निरुपितः। क्षत्रियाणां स्वधर्माचरणं युद्धम्। दुष्टस्य दण्डश्चोरादिभ्यः प्रजापालनं च धनुर्वेदस्य प्रयोजनम्। एवं च ब्रह्मप्रजापत्यादिक्रमेण विश्वामित्रप्रणीतं धनुर्वेदशास्त्रम्।

एवं गान्धर्ववेदो भगवता भरतेन प्रणीतः। स गीतवाद्यनृत्यभेदेन बहुविधः। देवताराधनं निर्विकल्पकसमाध्यादिसिद्धिश्च गान्धर्ववेदस्य प्रयोजनम्।

एवमर्थशास्त्रमपि बहुविधम्। नीतिशास्त्रमश्वशास्त्रं शिल्पशास्त्रं

Scanned by CamScanner

सूपशास्त्रं चतु:षष्ठिकलाशास्त्रं चेति । तत्सर्वं नानामुनिभिः प्रणीतम् । अस्य च सर्वस्य लौकिकवत्प्रयोजनभेदो द्रष्टव्यः ।

एवमष्टादश विद्यास्त्रयीशब्देनोक्ताः । अन्यथा न्यूनताप्रसङ्गात् ।

इस प्रकार देवता का सेवन और बार-बार अभ्यास से सिद्ध अस्त्रविशेषों का प्रयोग चतुर्थ पाद में निरुपित है । क्षत्रियों का स्वधर्म आचरण युद्ध है । दुष्टों को दण्ड देना और चोर आदि से प्रजाओं का परिपालन = परिरक्षण करना ही धनुर्वेद का प्रयोजन है । इस प्रकार ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि के क्रम से विश्वामित्र के द्वारा प्रणीत धनुर्वेद शास्त्र है ।

गान्धर्व वेद का भगवान् भरत ने प्रणयन किया । वह गीत, वाद्य और नृत्य आदि के भेद से अनेक प्रकार का है । देवताओं की आराधना और निर्विकल्प समाधि आदि की सिद्धि गान्धर्व वेद का प्रयोजन है ।

अर्थशास्त्र भी अनेक प्रकार के हैं । यथा—नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र शिल्पशास्त्र, सूपशास्त्र और चतु:षष्ठिकलाशास्त्र । ये सब अनेक मुनियों के द्वारा विरचित हैं । इन सबों का लौकिक प्रयोजनों के भेद के समान प्रयोजन भेद समझना चाहिए । इन अट्ठारह विद्याओं को त्रयी शब्द से कहा गया है, अन्यथा न्यूनता हो जायेगी ।

तथा सांख्यशास्त्रं भगवता कपिलेन प्रणीतम् । तच्च "अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" इत्यादि षडध्यायम् । तत्र प्रथमेऽध्याये विषयाः निरुपिताः । द्वितीयेऽध्याये प्रधानकार्याणि । तृतीयेऽध्याये विषयेभ्यो वैराग्यम् । चतुर्थेऽध्याये विरक्तानां पिङ्गलाकुरवादीनामाख्यायिकाः । पञ्चमेऽध्याये परपक्षनिर्णयः । षष्ठेऽध्याये सर्वार्थसंक्षेपः । प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानं सांख्यशास्त्रस्य प्रयोजनम् । तथा योगशास्त्रं भगवता पतञ्जलिना प्रणीतम् । अथ योगानुशासनमित्यादि पादचतुष्टयात्मकम् । तत्र प्रथमे पादे चित्तवृत्तिनिरोधात्मकः समाधिरभ्यासवैराग्यरुपं च तत्साधनं निरुपितम् ।

द्वितीये पादे विक्षिप्तचित्तस्यापि समाधिसिद्ध्यर्थं यमनियमासन-प्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधय इत्यष्टाङ्गानि निरुपितानि। तृतीये पादे योगिविभूतयः। चतुर्थे पादे कैवल्यमिति। तस्य च विजातीय-प्रत्ययनिरोधद्वारेण निदिध्यासनसिद्धिः प्रयोजनम्। तथा पशुपतिमतं पाशुपतं शास्त्रं पशुपतिना पशुपाशविमोक्षणाय "अथातः पाशुपतं योगविधि व्याख्यास्यामः" इत्यादि पञ्चाध्यायं विरचितम्। तत्राध्याय-पञ्चकेनापि कार्यरुपो जीवः। पशुः कारणं पतिरीश्वरः। योगः पशुपतौ चित्तसमाधानम्। विधिर्भस्मना त्रिषवणस्नानादिश्च निरुपितः। दुःखान्तसंज्ञो मोक्षश्च प्रयोजनम्। एत एव कार्यकारणयोगविधिदुःखान्ता इत्याख्यायन्ते।

सांख्यशास्त्र भगवान् कपिल द्वारा प्रणीत है। वह 'अथ त्रिविधदुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थं' ( तीन प्रकार के दुखों की अत्यन्त निवृत्ति ही अत्यन्त पुरुषार्थ हैं ) से प्रारम्भ करके छः अध्यायों में कहा गया है ( उसके प्रथम अध्याय में विषयों का, द्वितीय अध्याय में प्रधान के कार्यों का और तृतीय अध्याय में विषयों से वैराग्य का निरुपण है। चतुर्थ अध्याय में पिंगल, कुरवआदि विरक्तों की आख्यायिकाएँ, पञ्चम अध्याय में परपक्ष का निर्णय और षष्ठ अध्याय में सभी पदार्थों का संक्षेप रूप से वर्णन है। प्रकृति और पुरुष के विवेकज्ञान = भेदज्ञान ही सांख्यशास्त्र का प्रयोजन है। इसी को अन्यताख्याति भी कहते हैं।

योगशास्त्र पतञ्जलि के द्वारा प्रणीत है। 'अथ योगानुशासनम्' से प्रारम्भ करके चार पादों में वर्णित है। उसके प्रथम पाद में चित्तवृत्ति निरोधात्मक समाधि, अभ्यास और वैराग्य का स्वरूप और उसके साधन का निरुपण है। द्वितीय पाद में विक्षिप्त चित्त वाले पुरुषों को भी समाधि की सिद्धि के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठ अंगों का निरुपण है। तृतीय पाद में योग से प्राप्त विभूतियों का वर्णन है। चतुर्थ पाद में कैवल्य प्रतिपादित है। इस योगशास्त्र का विजातीय प्रत्ययों = ज्ञानों के निरोध के द्वारा निदिध्यासन की सिद्धि ही प्रयोजन है।

जिसमें पशुपति का मत वर्णित है, वह पाशुपतशास्त्र है। पशुपति ने पशु को

पाश से विमुक्ति के लिये 'अथातः पाशुपतं योगविधिं व्याख्यास्यामः' से लेकर पाँच अध्यायों में निरुपण किया है। उन पाँचों अध्यायों में कार्यरूप जीव, पशुकारण, पति ईश्वर, पशुपति में चित्त की समाधि योग और भस्म से त्रिषवण स्नान आदि विधियों का वर्णन है। दुःखान्त-संज्ञक मोक्ष ही प्रयोजन है। इसी को कार्य, कारण, योग विधि और दुःखान्त शब्दों से कहा जाता है।

एवं वैष्णवं नारदादिभिः कृतं पाञ्चरात्रम्। तत्र वासुदेवसंकर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धाश्चत्वारः पदार्था निरुपिताः। भगवान्वासुदेवः सर्वकारणं परमेश्वरः। तस्मादुपपद्यते संकर्षणाख्यो जीवः। तस्मान्मनः प्रद्युम्नः। तस्मादनिरुद्धोऽहंकारः। सर्वे चैते भगवतो वासुदेवस्यैवांशभूताः। तदभिन्ना एवेति भगवतो वासुदेवस्य मनोवाक्कायवृत्तिभिराराधनं कृत्वा कृतकृत्यो भवतीत्यादि च निरुपितम्।

नारद आदि के द्वारा प्रणीत पाञ्चरात्र वैष्णवों का शास्त्र है। यही वैष्णवशास्त्र कहलाता है। उसमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नाम के चार पदार्थ निरुपित है। भगवान् वासु देव सबों के कारण परमेश्वर हैं। उनसे संकर्षण नाम के जीव उत्पन्न होता है। उससे प्रद्युम्न नामक मन और उससे अनिरुद्ध नामक अहंकार की उत्पत्ति होती है। ये सभी भगवान् वासुदेव के ही अंशभूत हैं। उन सबों से अभिन्न भगवान् वासुदेव ही का मन, वाणी, शरीर और मन की वृत्तियों से आराधना करके आराधक कृतकृत्य हो जाता है—इत्यादि सभी पदार्थों का निरुपण है।

तदेवं दर्शितः प्रस्थानभेदः। सर्वेषां च संक्षेपेण त्रिविध एव प्रस्थानभेदः। तत्राऽऽरम्भवाद एकः। परिणामवादो द्वितीयः। विवर्त-वादस्तृतीयः। पार्थिवाप्यतैजस वायवीयाश्चतुर्विधाः परमाणवो द्वयणुकादिक्रमेण ब्रह्माण्डपर्यन्तं जगदारभन्ते। असदेव कार्यं कारक-व्यापारादुपपद्यत इति प्रथमस्तार्किकाणाम्, मीमांसकानां च सत्त्वरजस्तमो गुणात्मकं प्रधानमेव महदहंकारादिक्रमेण जगदाकारेण परिणमते।

पूर्वमपि सूक्ष्मरुपेण सदेव कार्यं कारणव्यापारेणाभिव्यज्यत इति

इस प्रकार प्रस्थान प्रदर्शित किया गया। संक्षेप रूप से सबों का तीन ही प्रस्थान भेद है—१ आरम्भवाद, २. परिणामवाद, ३. विवर्त्तवाद। पार्थिव, आप्य, तैजस और वायवीय चार प्रकार के परमाणु द्व्यणुकादि क्रम से ब्रह्माण्ड पर्यन्त जगत् का आरम्भ करते हैं। असत् ही कार्य कारक के व्यापार से उत्पन्न होता है—यह तार्किकों का मत है। मीमांसकों के मत में सत्त्व, रजस् और तमोगुणात्मक प्रधान ही महत्, अहंकार आदि क्रम से जगत् के आकार में परिणत होता है।

**द्वितीयः पक्षः सांख्ययोगपातञ्जलपाशुपतानाम्। ब्रह्मणः परिणामा जगदिति वैष्णवानाम्। स्वप्रकाशपरमानन्दाद्वितीयं ब्रह्म स्वमाया-वशान्मिथ्यैव जगदाकारेण कल्पत इति तृतीयः पक्षो ब्रह्मवादिनाम्। सर्वेषां प्रस्थानकर्त्तॄणां मुनीनां विवर्त्तवादपर्यवसानेनाद्वितीये परमेश्वर एव प्रतिपाद्ये तात्पर्यम्। न हि ते मुनयो भ्रान्ताः सर्वज्ञत्वात्तेषाम्। किन्तु बहिर्विषयप्रवणानामापाततः पुरुषार्थे प्रवेशो न सम्भवतीति नास्तिक्यवारणाय तैः प्रकारभेदाः प्रदर्शिताः। तत्र तेषां तात्पर्यमबुद्ध्वा वेदविरुद्धेऽप्यर्थे तात्पर्यमुत्प्रेक्ष्यमाणास्तन्मतमेवोपादेयत्वेन गृह्णन्तो जना नानापथजुषो भवन्तीति सर्वमनवद्यम्।**

**॥ इति श्रीमधुसूदनसरस्वतीविरचितः प्रस्थानभेदः ॥**

साख्य, योग, पातञ्जल तथा पाशुपत मत में पूर्वकाल में भी सूक्ष्म रूप से सत् = विद्यमान कार्य ही कारण के व्यापार से अभिव्यक्त नोता है यह द्वितीय पक्ष है। ब्रह्म का परिणाम यह जगत् है—यह वैष्णवों का मत है। स्वप्रकाश, परमानन्द, अद्वितीय ब्रह्म अपनी माया के कारण जगत् की मिथ्या ही कल्पना करता है—यह ब्रह्मवादियों का तृतीय पक्ष है। सभी प्रस्थानों के कर्त्ता मुनियों का विवर्त्तवाद में ही पर्यवसान होने के कारण अद्वितीय परमेश्वर की प्रदिपाद्यता में ही तात्पर्य है। मुनि सर्वज्ञ होते हैं, इसलिये उनको भ्रान्त नहीं कहा जा सकता, किन्तु बाह्य-विषयों में आसक्त पुरुषों को आपाततः परम पुरुषार्थ में प्रवेश सम्भव नहीं है। अतः उनके नास्तिक्य वारण के लिये मुनियों ने प्रकार

Scanned by CamScanner

भेद का प्रदर्शन किया है! उसमें उनका तात्पर्य न जानकर वेद विरुद्ध अर्थ में भी तात्पर्य को उत्प्रेक्षित करते हुए और उनके मतों को ही उपादेय मानकर ग्रहण करते हुए मनुष्य अनेक मार्गों के अनुयायी हो जाते हैं। इस प्रकार सभी प्रस्थानों का निरूपण हुआ।

॥ इस प्रकार श्री मधुसूदनसरस्वती विरचित प्रस्थानभेद की हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई ॥

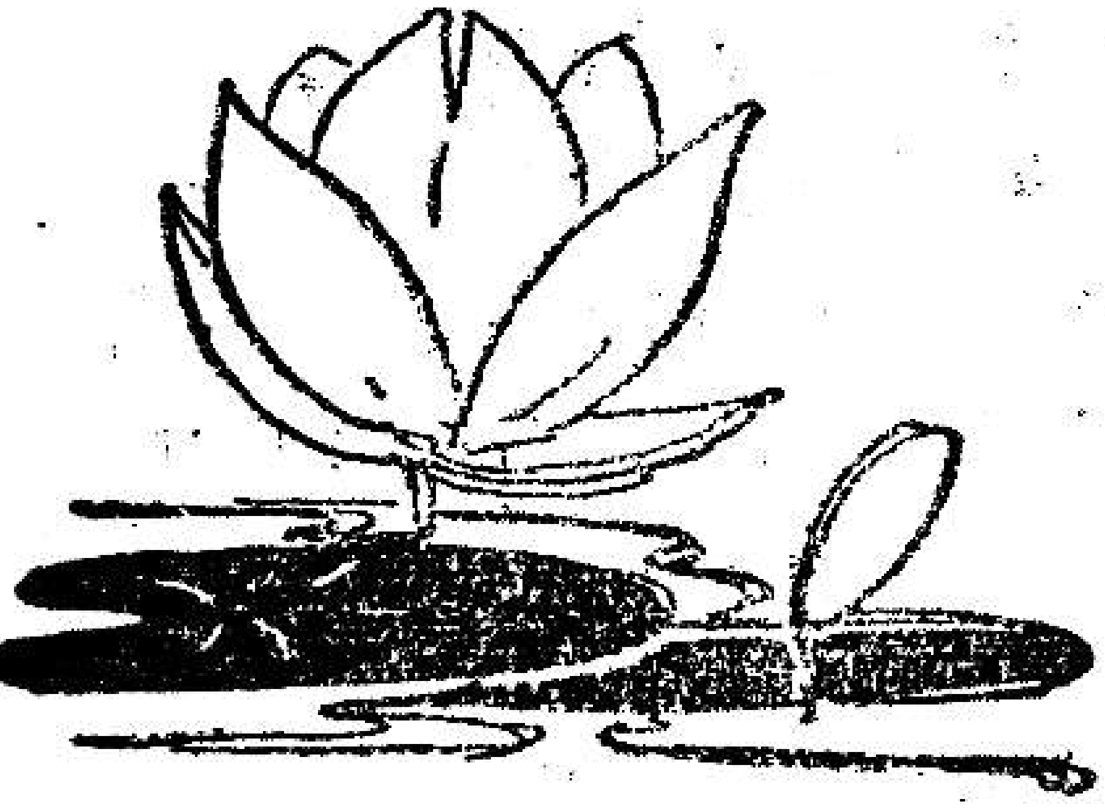

સમશીતિર્નિદ્દિષ્ટાસ્તેષા: પરબ્રહ્મ (સનાતન:)
ડાયનાસ્ગાનકી નાથો વેદવેદ્યો મહામતિ:॥
ગઅકુંરનાગપાલ:

Scanned by CamScanner